कर्बला का आफ़ाक़ी पैग़ाम

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द
अनुवादकः हुसैन हैदर, अकबरपुरी

(3)

दीने इस्लाम अम्न और अमान, सुलह और सलामती से इबारत है, क्योंकि इस्लाम दीने फ़ितरत है। कुरआने करीम में इरशाद है- मफ़हूमः यह फ़ितरत है और अल्लाह ने सारे इन्सानों को इसी फ़ितरत पर पैदा किया है" (सूरए रूम, आयतः 30) और इन्सान फ़ितरतन जंगो जिदाल व फ़ितना फ़साद से नफ़रत करता है। फितरते सलीम भी ख़ूँरेज़ी को पसंद नहीं करती, इसलिए इस्लाम में जंग बदरज-ए-मजबूरी है और दिफ़ाइ हैसियत रखती है। यही वजह है कि रसूले इस्लाम[स०] ने बहुत सी जंगों में फ़तह हासिल की और ऐसे हालात में फ़तह मिली कि जहाँ जाहिरी हालात के लेहाज़ से फ़तह तक़रीबन नामुमकिन थी, जैसे कि जंगे बद्र में कि जहाँ मुसलमानों की अफ़रादी कुव्वत भी बहुत कम थी और अस्लहा भी बहुत मामूली था, इसके बाद भी मुसलमान लश्कर को फ़तह हुई, मगर फिर भी कुरआन मजीद ने फ़त्हे मुबीन की सनद नहीं दी, लेकिन जब हुदैबिया के मक़ाम पर मुसलमानों और मुश्रिकों के दरमियान सुलह हुई उस वक़्त आयते कुरआनिया सनद देती हुई उतरी- "ऐ रसूल हम ने आपको खुली हुई कामयाबी अता की" (सूरए फ़तह, आयत-1) कई माह पहले इस मौजू पर तफ़सील से अर्ज़ किया जा चुका है।

पूरे वाक़िअ-ए-करबला में इमाम हुसैन[अ०] की भरपूर कोशिश रही कि ख़ूँरेज़ी से बचा जाए। इस मक़सद से इमाम ने रसूलुल्लाह[स०] का रौज़ा छोड़ा और फ़ातिमा ज़हरा[स०] और भाई हसन मुज्तबा[अ०] के मज़ारात से जुदाई बर्दाश्त की। ऐन हज के ज़माने में मक्का मुकर्रमा छोड़ा और मैदाने करबला में जब आप हज़ारों दुश्मनों से घिरे हुए थे, आप ने यह पेशकश फ़रमाई कि मुझे किसी सरहदी इलाक़े में चले जाने दो। मशहूर है कि इमाम ने फ़रमाया था कि मुझे हिन्दुस्तान जाने दो और उसकी वजह यह बताई जाती है कि क्योंकि सरज़मीने हिन्द हमेशा अमन और अमान का गहवारा रही है, इसलिए इमाम ने यह तजवीज़ रखी थी। अगरचे तारीख़ के क़दीम मताबे में हिन्दुस्तान का नाम नहीं मिलता है। पूरा वाक़िअ-ए-करबला क़यामे अमन की इस्लाम की बुनियादी पॉलीसी की भरपूर नुमाइंदगी करता है।

वाक़िअ-ए-करबला ता क़यामे क़यामत हर ज़ालिम व जाबिर के लिए वारनिंग की हैसियत रखता है और काएनात को यह आफ़ाक़ी पैग़ाम दे रहा है कि ज़ालिम जितना भी चाहे ज़ुल्म कर ले शिकस्त उसका मुक़द्दर है। ज़िल्लत व रुसवाई उसकी क़िसमत है और सफ़्ह-ए-हस्ती से मिट जाना उसका नसीब है। करबला ने यह साबित कर दिया कि फ़तह हमेशा मज़लूमियत की होती है। बातिल ताक़तों और जाबिर हुक्मरानों की हमेशा यह कोशिश रही कि हक़ का सर झुका दिया जाए, क्योंकि सर काट लेना उनकी शिकस्त है, सर को झुकवा देने में उनकी फ़तह है। सर का कट जाना खुद इस बात की दलील बन जाता है कि अगर झुक गया होता तो कटता नहीं, लेहाज़ा ज़ुल्म व जब्र का असल मक़सद और मतमहे नज़र हक़ के सर को झुकवा देना होता है। इसमें उसकी कामयाबी है, इसलिए वह भरपूर कोशिश करता है और अपनी पूरी ताक़त झोंक देता है कि ख़ौफ़ज़दा करके सर झुकवा ले। इसकी बेहतरीन मिसाल हज़रत इब्राहीम[अ०] का वाक़िआ है। मेरा सवाल है कि एक इन्सान

को जलाने के लिए कितनी लकड़ियों की ज़रूरत है? अगर नमरूद का मक़सद हज़रत इब्राहीम[अ०] को महज़ जला देना होता तो चंद मन लकड़ियाँ काफ़ी थीं, लेकिन लकड़ियों का एक अज़ीम ढेर जमा करवाना जिन से इतनी आग रौशन हुई कि खुद जलाने वाले उस आग के नज़दीक जाने से क़ासिर थे। अगर कोई परिन्दा ऊपर से परवाज़ करता था तो जल जाता था। यह इतनी ज़बरदस्त आग क्यों जलाई गई? मक़सद जलाना नहीं था, बल्कि नुमाइन्द-ए-हक़ को ख़ौफ़ज़दा करके अपनी झूठी खुदाई मनवाना था, क्योंकि ख़लील[अ०] खुदा को जला देना शिकस्त थी और सर झुकवाना फ़तह थी। इस तरह से अगर हम करबला के वाक़िए पर नज़र डालें तो यही तरकीब (ज्बजपब) यज़ीद और यज़ीदी लश्कर ने हबीबे खुदा के जानशीन और हक़ के नुमाइंदे इमाम हुसैन[अ०] के लिए भी इख़्तियार की थी। हुसैन[अ०] को क़त्ल कर देने में यज़ीद की शिकस्त थी। उसका मक़सद था कि नवास-ए-रसूल[स०] से अपनी बातिल हुकूमत पर मोहरे ताईद सब्त करवा ले। उसमें यज़ीद की जीत थी। यही वजह थी कि करबला में ३० हज़ार या बाज़ रिवायतों के मुताबिक़ तक़रीबन एक लाख का लश्कर जमा किया गया था। अगरचे बनी हाशिम बहादुरी में यकताए रोज़गार थे, लेकिन फिर भी एक ज़ाहिरी निगाह से अगर देखा जाए तो 72 या ज़्यादा से ज़्यादा 100 अफ़राद पर मुशतमिल एक मुख़्तसर से लश्कर के लिए हद से हद दो से तीन हज़ार तक का लश्कर काफ़ी था, लेकिन एक लाख का लश्कर जमा कर देना खुद इस बात की दलील है कि सर काटना मक़सद न था डराकर सर को झुकवाना मक़सद था। इसी लिए पानी बंद किया गया, ताकि यह उस से मजबूर होकर सर झुका दें, मगर इमाम हुसैन[अ०] और उनके छोटे-छोटे बच्चों ने साबित किया कि वह जानवर होते हैं जो भूक व प्यास से मजबूर होकर सर डाल देते हैं, हम इन्साने कामिल हैं, हम पर यह हरबे कारगर नहीं हो सकते। जितना-जितना ज़ुल्म बढ़ रहा था, उतना यज़ीद शिकस्त से नज़दीक हो रहा था और हुसैन फ़तह के क़रीब। लश्करे यज़ीदी के सिपेहसालार को चाहिए था कि अपने पूरी लश्कर को एक दफ़ा हमले का हुक्म दे देता, ताकि जंग जल्द अज़ जल्द इख़्तेताम को पहुँच जाए, लेकिन उसने अरब की इन्फ़ेरादी जंग की रिवायत को तरजीह दी। इसी हिक्मते अमली के तहत (अगर इसको हिक्मत कहा जा सके) कि लाशें उठाते-उठाते हुसैन[अ०] की हिम्मत शिकस्ता हो जाए। चश्मे काएनात हैरत से मंज़र देख रही थी कि कभी भाँजों की लाशें हुसैन[अ०] लेकर आ रहे हैं, कभी यतीम भतीजे की लाश इस तरह से ला रहे हैं कि सीने से सीना मिला हुआ है और लाश के पैर ज़मीन पर ख़त बनाते आ रहे हैं। कभी अपने १८ साला बेटे के सीने से टूटे हुए नेज़े की अनी निकाल रहे हैं। हुसैन[अ०] की हिक्मते अमली मज़लूमियत की हिक्मते अमली थी। इमाम हुसैन[अ०] समझ रहे थे कि जितना ज़ुल्म बढ़ रहा है ज़ुल्म खुद अपने जाल में फंसता जा रहा है। मज़लूमियत का घेरा ज़ुल्म के गिर्द तंग होता जा रहा है और ज़ुल्म अपनी ज़िल्लत आमेज़ शिकस्त के नज़दीक होता चला जा रहा है। यज़ीदियत ने अपनी शिकस्त पर हमेशा के लिए उस वक़्त मोहर लगा दी जब एक छः महीने के बच्चे के गले पर पानी देने के बजाए तीन भाल का तीर मारा गया और आख़िर में ज़ुल्मे यज़ीदी ने अपनी शिकस्त का एलान करते हुए सजदे के आलम में नुमाइंद-ए-हक़ का सर काट लिया और खुद अपने हाथों से उसे नेज़े पर बलंद कर दिया। नोके नेज़ा पर यह सरे हुसैन नहीं था, बल्कि हुसैनियत की फ़तह का परचम था कि देखो यह सर कट तो गया, मगर बातिल के सामने झुक न सका। मज़लूमियत को फ़तह हुई और ज़ालिम को ज़िल्लत आमेज़ शिकस्त हुई। करबला ने इन्सानियत को रहती दुनिया तक यह आफ़ाक़ी पैग़ाम दिया कि हमेशा फ़तह मज़लूमियत की होती है और क़स्सामे अज़ल ने ज़ुल्म और ज़ालिम के मुक़द्दर में रुसवाइ और हार लिख दी है।

(बशुक्रिया रोज़नामा 'राष्ट्रीय सहारा' (उर्दू) 30 दिसम्बर 2011[ई०])

